डॉ. मनोज भारत कृत श्रीमद्भगवद्गीता दोहावली : एक अध्ययन

दोहा हिंदी साहित्य के प्राचीनतम छंदों में से है और आजकल बहुतायत में प्रयोग किया जाने वाला छन्द है। हिंदी साहित्य के प्रख्यात साहित्यकार डॉ. राधेश्याम शुक्ल दोहे की लोकप्रियता के बारे में लिखते हैं, ''अपभ्रंश भाषा से हिंदी में आया दोहा वह औरस छन्द है जिसने अपनी 'वामनी' काया में दुनिया के कोने-अंतरे तक को समा लिया है।'' जब मंचीय कविता पर रुबाई और मुक्तकों का बोलबाला होने लगा तो हरियाणा के पूर्व राज्यकवि उदयभानु हंस की कृति 'हिंदी रुबाइयाँ' की भूमिका में द्विवेदी युग के प्रतिनिधि कवि रामनरेश त्रिपाठी दोहा छन्द के अप्रासंगिक होने की घोषणा कर देते हैं। लेकिन आपाधापी के युग मे समय की माँग, संक्षेपण की आवश्यकता को देखते हुए दोहा एक बार फिर कवियों के सृजन की धुरी बन गया है। आचार्य देवेंद्र शर्मा इंद्र, डॉ. महेश दिवाकर, डॉ. सारस्वत मोहन मनीषी, डॉ. रामनिवास मानव, डॉ. राधेश्याम शुक्ल, श्रीनिवास मयंक, डॉ. पुरुषोत्तम पुष्प आदि वरिष्ठ साहित्यकारों के साथ-साथ अनेक प्रतिष्ठित-नवोदित कवि भी इस छन्द में लगातार सृजन कर रहे हैं। गीतकार विकास यशकीर्ति तो डॉ. मनोज भारत के दोहा संग्रह 'दूजा नहीं कबीर' के एक समीक्षा लेख में इन्हें 'आधुनिक साहित्य का टेलीग्राम' कह कर महिमा मंडित करते हैं। केवल भाव-भाषा के संक्षेपण के कारण ही नहीं, मध्यकाल में सर्वाधिक प्रयुक्त तथा लोक स्वीकृत होने के कारण भी इसकी लय आज तक सामान्य जन के लिए सहज स्वीकृत है। यदि श्रीमद्भगवद्गीता जैसे गूढ़ आध्यात्मिक ग्रंथ को सहज सरल भाषा में जन-जन में प्रचारित करना हो तो दोहे से उपयुक्त छन्द कोई अन्य नहीं हो सकता। डॉ. मनोज भारत का प्रस्तुत कृति में दोहा छन्द का प्रयोग करना एक अत्यंत विद्वतापूर्ण निर्णय है। इसमें मंगलाचरण

के अतिरिक्त मूल गीता अनुसार अट्ठारह अध्याय हैं। वर्तमान में गीता के अनेक भाष्य उपलब्ध हैं। किसी में प्रत्येक अध्याय के शीर्षक का उल्लेख या अनुक्रम दिया गया है तो किसी में नहीं। कुछ में अध्यायों के नामकरण में भिन्नता भी देखने को मिलती है। इस कृति में अघ्याय संख्या अट्ठारह ही है किंतु कुछ अध्यायों के नामकरण में सरलीकरण को प्राथमिकता दी गई है। मूल गीता संस्कृत भाषा में लिखी गई है। संस्कृत भाषा के शब्दों में संयोगात्मक प्रवृत्ति होने के कारण वह कम शब्दों में अधिक भाव व्यक्त करने का सामर्थ्य से युक्त है। हिंदी में समतुल्य भावों को व्यक्त करने के लिए अधिक विस्तार देना पड़ता है। इसका परिणाम यह देखने को मिला कि डॉ. मनोज भारत को अपना विषय रखने के लिए मूल गीता से कहीं अधिक अर्थात् कुल 786 दोहों में अपनी बात कहनी पड़ी है।

दिखने में छोटा-सा लगने वाला दोहा एक अर्धसम मात्रिक छन्द है। इसमें 13-11, 13-11 मात्राओं के चार चरण होते हैं, जो दो तुकांत पंक्तियों में निबद्ध होते हैं। लेकिन मात्राओं की गिनती भर कर देने से दोहा प्राणवंत नहीं हो जाता। उसके लिए दो पंक्तियों में ही भाषा की समस्त समास शक्ति, भाव का समाहार, अर्थ के चमत्कार को संश्लिष्ट करना होता है, तभी दोहा लिखना सार्थक हो पाता है। 'जो पढ़ा, जैसा लगा' कृति में डॉ. मनोज भारत ने दोहे के बारे में लिखते हैं-

शब्द भाव का श्लेष हो, सम्मत शिल्प विधान।
सच्चा दोहा है वही, सबका हो सन्धान।।

जब मौलिक चिंतन के अनुसार दोहा लिखना हो तो कवि के पास उर्वर चिंतन धरातल और व्यापक कल्पना शक्ति के शस्त्र होते हैं, जिनका वह खुलकर प्रयोग कर सकता है। वहीं जब आपको पूर्व प्रदत्त भाव या अर्थ पर ही दो पंक्तियों में अपनी बात कहनी हो तो यह आँखों पर पट्टी बाँध कर मछली की आँख पर तीर से निशाना लगाने जैसा दुसाध्य हो जाता है। वहाँ यह स्वतंत्रता आपसे छिन जाती है। गीता जैसे गूढ़ आध्यात्मिकग्रंथ के भावों का दोहान्तरण ऐसा ही दुष्कर कार्य है जिसे डॉ. मनोज भारत ने सफलतापूर्वक साधा है। वे इस हेतु साधुवाद और अभिनंदन के पात्र हैं। दोहे जैसे संश्लिष्ट छन्द में मात्रा गणना और व्यवस्था के समस्त विधान इस कृति में पूर्णतः निर्वाहित हुए हैं। प्रत्येक सम अर्थात् दूसरे और चौथे चरण का अन्त गुरु-लघु से, विषम चरणों के अंत में तीन लघु या लघु-गुरु से होता है। शब्द संसृति असमृद्ध होने के कारण कुछ साहित्यकार ण और न (जैसे प्राण और मान) या स, श, ष (राकेश-विशेष, प्रकाश-विकास) को एक ही मान कर समतुकांत मानते हुए प्रयोग करते हैं। लेकिन डॉ. मनोज भारत ने अपनी पूरी

कृति के दोहों को इस दोष से पूर्णतः मुक्त रखा है। दोहे में मात्रिक विधान के अतिरिक्त उसकी लयात्मकता को साध कर रखना किसी भी रचनाकार के लिए बहुत बड़ी चुनौती होता है। इसको साधने के लिए भी कुछ विधानों की पालना अवश्य सुनिश्चित की जानी चाहिए। दोहे की किसी भी पंक्ति का आरम्भ जगण (1 2 1, जैसे जहाज) शब्द से करना, उसकी लय में बाधा उत्पन्न करता है। यद्यपि इसमें कुछ अपवाद भी हैं, जैसे-

बड़े बड़ाई ना करें, बड़े न बोलें बोल।
रहिमन हीरा कब कहे, लाख टका है मोल।।

इस दोहे का आरम्भ जगण से है, किन्तु गेयता विद्यमान होने के कारण यह स्वीकार्य है। डॉ. मनोज भारत इस प्रकार का कोई खतरा स्वीकार ही नहीं करते। वे अपनी पूरी कृति में किसी भी दोहे का आरम्भ जगण से नहीं करते। इसी प्रकार दोहे के किसी भी चरण के आरम्भ में पंचक अर्थात् पाँच मात्राओं के शब्द, जैसे संसार आदि भी लय भंग करते हैं। इन शब्दों से भी डॉ. मनोज भारत अपने दोहों को बचा कर उनका लय-माधुर्य अक्षुण्ण रखने में सफल रहे हैं। दोहे में लयात्मक अवरोध उत्पन्न करने वाला एक और घटक होता है त्रिकल अर्थात् तीन मात्राओं वाले शब्दों का प्रयोग। यदि दोहे में कहीं त्रिकल शब्द का उपयोग होता है तो उसके तत्काल पश्चात् दूसरे त्रिकल शब्द के उपयोग से उसका लय अवरोध समाप्त हो जाता है और गेयता सतत बनी रहती है। डॉ. मनोज भारत ने अपनी कृति में लय सन्धान के इन समस्त नियमों की पालना करते हुए एक कुशल शिल्पी की भाँति अपनी इस गीता दोहा कृति को तराशा है।

कुछ नवोदित दोहाकारों के साथ-साथ कुछ प्रतिष्ठित साहित्यकार भी अपने दोहों में आना, जाना, खाना जैसे मानक शब्दों को अंत में गुरु-लघु रूप के साँचे में ढालने के लिए इनके स्थान पर क्रमशः आय, खाय, जाय जैसे शब्दों का प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार मात्रा पूर्ति के लिए एक को इक करना, न को ना में बदलना भी देखा गया है। लेकिन डॉ. मनोज भारत की समीक्ष्य कृति में ये प्रयोग आपको कहीं भी देखने को नहीं मिलते। उन्होंने शब्दों के प्रयोग में मानक स्वरूप को ही अंगीकार किया है। इससे उनका समृद्ध शब्द भंडार स्वतः प्रमाणित हो जाता है। उनके पूर्ववर्ती संकलनों में उनकी भाषा संस्कृतनिष्ठ तत्सम रही है। इस कृति में आध्यात्मिक विषय होने के कारण उनके पास जटिल व क्लिष्ट शब्दावली के प्रयोग के पूरे अवसर थे और व्यापक शब्द भंडार का सामर्थ्य भी उनमें था। किन्तु विषय के सरलीकरण की विराट चेष्टा को सुफलित करने के लिए उन्होंने सामान्य

सुग्राह्य शब्दों के चयन को प्राथमिकता देकर अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया है। इससे कृति को एक बड़ा पाठक वर्ग मिलने की सम्भावनाएँ हैं। प्रख्यात साहित्यकार महेंद्र सिंह सागर डॉ. मनोज भारत के दोहों की भाषिक भंगिमा और शब्द वैविध्य के बारे में लिखते हैं—''अपने दोहों में डॉ. भारत कभी रीतिकाल के घनानंद तो कभी छायावाद की 'चौकड़ी' नजर आते हैं...कई बार वे हिंदुस्तानी से सहज सरल हो जाते हैं तो कई बार व्यंजना को ओढ़ लेते हैं।'' डॉ. मनोज भारत ने हिंदी साहित्य की विभिन्न विधाओं में एक लंबी साधना की है। उनकी कविता, खंडकाव्य, आलोचना, शोध, जीवनी, शैक्षिक कृतियों सहित दर्जनों प्रकाशन साहित्य जगत् में उनके मान वरण के हेतु बनी हैं। दोहा छन्द में भी ये इनकी दूसरी कृति है। विनोद आचार्य अपनी आलोचना कृति 'विवेचना वीथिका' में डॉ. भारत के दोहों को विशिष्ट शब्द-संयोजन के साथ-साथ मंजुल भाव का सन्धान करने वाला घोषित करते हैं। श्री आचार्य के अनुसार, ''डॉ. भारत के दोहे भाषा एवं भाव के उत्कर्ष का प्रतिमान हैं।'' यह डॉ. भारत के दोहा शिल्प की लोकप्रियता ही है कि गीता के इस संकलन के अभी तक चार संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

श्रीमद्भगवद् गीता के अनेक भाष्य-टीकाएँ, गद्य-पद्य अनुवाद भारतीय वाङ्मय की शोभा बन रहे हैं। समीक्ष्य कृति को इनमें से किस वर्ग में रखा जाना चाहिए, यह विवेचना का विषय हो सकता है। रचनाकार स्वयं इस बारे में कोई घोषणा नहीं करता है। हम सामान्यतः अनुवाद या काव्यानुवाद की कोटी में उन कृतियों को रखते हैं जिनमें रचनाकार अपनी किसी मौलिक उद्भावना या चिंतन का आरोपण कथावस्तु पर नहीं करता है। गहन अध्ययन विश्लेषण से हम पाते हैं कि डॉ. मनोज भारत कृत इस कृति में कुछ नवीन अवधारणाएँ सूक्ष्म रूप में इसके मूल स्वरूप को अक्षुण्ण रखते हुए पाठक को सौंपी हैं। मूल गीता से भिन्न कृति का आरम्भ मंगलाचरण से होता है जिसमें माँ वाणी, श्री गणेश वंदना सहित श्री गीता के महत्व का वर्णन किया गया है। इस प्रकार की परम्परा प्रायः खण्ड-काव्य, महाकाव्यों में निर्वहित की जाती है, अतः इसे खंडकाव्य कहना उपयुक्त प्रतीत होता है। मूल कथावस्तु में श्रीकृष्ण के ईश्वरीय स्वरूप की संकल्पना सूत्र रूप में विद्यमान रही है, जबकि विवेच्य कृति में कवि को श्रीकृष्ण का शिक्षक या गुरु रूप अभीष्ट रहा है। डॉ. मनोज भारत लिखते हैं-

मन में कुछ संकल्प ले, अधरों पर मुस्कान।
आए गुरु के रूप में, बोले कृपा निधान।। 17/02

ऐसे अनेक उदाहरण समीक्ष्य कृति में देखे जा सकते हैं जो कृष्ण-अर्जुन के

गुरु-शिष्य सम्बन्ध का पुष्टन करते हैं। कवि के ऐसा सूक्ष्म और मौलिक परिवर्तन करने से मूल ग्रंथ की उद्‌भावनाओं पर कोई प्रभाव दिखाई नहीं देता, क्योंकि अंतिम लक्ष्य भ्रम, मोह, अज्ञान का निराकरण है, वह भले ही शिष्य के मन से हो या भक्त के। कवि श्रीमद्‌भगवद्‌गीता को शिक्षण मनोविज्ञान के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करता है। इसमें पूर्व प्रचलित समस्त दर्शनों का सरलीकृत क्रमबद्ध विश्लेषण-विवेचन, समन्वय है। इससे पूर्व वेदों का प्रादुर्भाव हो चुका था, लेकिन उनके वृहद विस्तार को देखते हुए सामान्यजन द्वारा उसे आत्मसात करने में कठिनाई होती थी। श्री गीता वेद चिंतन का खंडन न करके उनका सरलीकरण और मण्डन करती है। मूल गीता में कुछ स्थलों पर भाषा की व्यंजना का प्रयोग करते हुए मिथ्या वेद अनुचारियों पर कटाक्ष भी किए गए हैं। ऐसे सकाम साधकों को 'वेदवाद रताः (42/02)' कह कर उनके निश्चय को ज्ञान का विचलन, अस्थिर बुद्धि घोषित करते हुए त्याज्य माना गया है। सामान्य पाठक कई बार व्यंजनाओं के निहितार्थ की अपेक्षा शाब्दिक अर्थ पर अटक कर गीता को वेद विरुद्ध भी मान लेते हैं, ऐसा नहीं होना चाहिए। गीता में अनेक स्थानों पर वेद विधान, वेदों के व्यवहार को अनुकरणीय माना गया है। डॉ. मनोज भारत इस प्रकार की समस्त व्यंजनाओं की संकरी गली से बड़ी सावधानी से निकलते हैं। वे अपने शब्द भंडार से वैकल्पिक शब्दों को ऐसे स्थानों पर प्रतिस्थापित कर, पाठक चिंतन को किसी भी सम्भावित विचलन से बचा लेते हैं। वे लिखते हैं-

सुख की रखते लालसा, तंत्रों का सन्धान।
ले मन्त्रों का आसरा, शक्ति स्वर्ग का ध्यान।। 53/02
इच्छित इनके तुच्छ हैं, खुद ही बने सुजान।
वे इनको ही मानते, उत्तम विधि विधान।। 55/02

समान्यतः काव्य या भाव अनुवाद में कवि नवीन चिंतन, अवधारणाओं को स्वीकारने तथा मूल कृति में कुछ छोड़ने या जोड़ने को तत्पर नहीं होते। लेकिन डॉ. मनोज भारत इस दृष्टि से अत्यंत उदार हैं। अंतिम अध्याय में जब श्रीकृष्ण पूछते हैं कि क्या उसे मेरे द्वारा दिया गया ज्ञान कुछ समझ में आया तो अर्जुन के उत्तर में नए रूपकों का अनुभावन करें-

तम मृग भ्रम छोड़े नहीं, रवि सिंह और ज्ञान।
अर्जुन ले गाण्डीव को, बोला सीना तान।। 74/18

कर्म आधारित वर्ण व्यवस्था तत्कालीन समाज में मानी जाती थी। तदनन्तर

वह जन्म आधारित हो जाति-उपजातियों के रूप में रूढ़ हो एक बन्द वर्ग में बदल गई। उस काल में हो सकता है उसकी कुछ उपादेयता-अनिवार्यता रही हो या न रही हो, लेकिन आज हम एक समतामूलक समाज की स्थापना को कृतसंकल्प हैं। ऐसे में सुकवि डॉ. मनोज भारत अपनी पूर्ण कृति में वर्ण या जाति सूचक शब्दों-प्रतीकों के उपयोग में बड़े सजग हैं, उन्होंने अपनी कृति को इनसे बचा कर रखा है। उनकी भाषा का अभिव्यक्ति सामर्थ्य इतना समृद्ध है कि इन शब्दों के प्रयोग के भी अभीष्ट भाव को प्राप्त कर लेते हैं। वे प्राणी मात्र में उस ईश्वर को देखने तथा सभी को समान मानने वाले साधक को ही मुक्ति पथ का पथिक मानते हैं-

सब में देखे एक को, समभावी जग मात्र।
*भ्रष्ट कभी होता नहीं, ऊँची गति का पात्र।।*32/13

आध्यात्मिक ग्रंथों में पौराणिक पात्रों को केंद्र में रख कर सामयिक नवीन सन्दर्भों का उद्घाटन कर कृतियों के सृजन की एक समृद्ध परंपरा साहित्यजगत में रही है। रामचरितमानस, कामायनी, उर्वशी, यशोधरा, साकेत, शत्रुघ्न चरित, रश्मिरथी, अंधायुग, कुरुक्षेत्र, महाराज पृथु आदि अनेक कालजयी कृतियाँ हमारी अमूल्य धरोहर हैं। **डॉ. मनोज भारत** कृत **'गीता दोहावली'** को भी उक्त तथ्यों के आधार पर खंडकाव्य कृति वर्ग में माना जा सकता है। इस कृति के माध्यम से उनका चिंतन नवनीत और शिल्प कौशल साहित्य जगत् में उनकी यश पताका को ऊँचाइयों तक ले जाएगा, ऐसी मेरी मान्यता है। माँ वाणी से प्रार्थना है कि डॉ. मनोज भारत की यह शब्द-साधना अनवरत जारी रहे और वे नित-नवीन कृतियों से साहित्य जगत् को समृद्ध करते रहे। शुभकामनाएँ।

-प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़

पूर्व कुलपति, सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान